International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 19-10-2020; Accepted: 04-11-2020; Published: 25-11-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 6; 2020; Page No. 54-58

विशुद्धिमार्ग के परिप्रेक्ष में समाधि का स्वरुप और उसकी उपादेयता

शरद पंढरीनाथ सोनवने
शोध-छात्र बौद्ध अध्ययन विभाग साँची-बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
समाधि को तथागत बुद्ध के उपदेशों में निर्वाण (ज्ञान) प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम साधन माना गया है। विशुद्धिमार्ग नामक ग्रन्थ में समाधि विषय की विस्तृत चर्चा की गयी है जो उसके महत्व को स्पष्ट करती है। समाधि चित्त की वह अवस्था है जहाँ साधक अपने चित्त को किसी एक आलम्बन पर स्थिर कर देता है और चित्त तथा शरीर की अनित्यता का यथाभूत दर्शन करता है। समाधि से साधक शरीर के दुखमय और अनात्म स्वभाव का दर्शन करता है। समाधि को आधार बनाकर साधक सभी दुखों से मुक्त हो सकता है।

चित्त की परिशुद्धि के लिए तथागत बुद्ध ने समाधि का मार्ग बताया है जिसे विशुद्धिमार्ग में आचार्य बुद्धघोष ने बहुत ही कुशलतापूर्वक समझाया है। इसलिए उनके द्वारा रचित इस ग्रन्थ को विशुद्धिमार्ग नाम दिया गया। समाधि चित्त की वह कुशल अवस्था है जहाँ साधक का चित्त राग-द्वेष और मोह रहित हो जाता है। समाधि का अभ्यास करनेवाला साधक निरंतर अभ्यास से राग-द्वेष और मोह की जड़े खोदकर कर्मसंस्कारों से रहित हो जाता है। तृष्णारहित हो जाता है जिसे बौद्ध दर्शन में निर्वाण कहा गया है जो सभी दुखों का नाशक और सुख-शांति प्रदान करनेवाला है।

शील, समाधि और प्रज्ञा इन तीन विषयों पर विशुद्धिमार्ग में चर्चा की गयी है। ये तीनों ही एक दुसरे पर आश्रित हैं। अर्थात शील के अभ्यास के बिना समाधि लगना बिलकुल असम्भव है और समाधि के बिना प्रज्ञा का उत्पाद नहीं हो सकता। प्रज्ञा के उत्पाद के बिना मनुष्य के दुखों का नाश करना संभव नहीं।

समाधि की प्राप्ति के लिए चालीस कर्मस्थान विशुद्धिमार्ग में बताये गए हैं जिनकी चर्चा और महत्व इस शोध-पत्र में प्रस्तुत किया गया है। समाधि काया, वाचा और चित्त के कर्मों को सुधारने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। काया, वाचा और चित्त के कर्मों में जैसे-जैसे सुधार होता है वैसे-वैसे कोई भी व्यक्ति नैतिक जीवन का अनुसरण करने लगता है यह समाधि का सबसे बड़ा लाभ है। मनुष्य के विकारों का प्रहाण करने के लिए समाधि अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि विकारों के कारण ही मनुष्य दुराचार करता है। इस शोध-पत्र में इस बात को स्पष्ट की गयी है कि समाधि मनुष्य के नैतिक, अध्यात्मिक, मानसिक तथा सुख-शांति के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

मूल शब्द: आर्य अष्टांगिक मार्ग, सात बौध्यंग, चित्त, संस्कार, कुशल चित्त, निर्वाण, शील, प्रज्ञा, कर्मस्थान, एकाग्रता, पुण्य धर्म, तृष्णा-निरोध, कसिण, अशुभ, अनुस्मृतियाँ, ब्रह्मविहार, आरुप्य, एक संज्ञा, एक व्यवस्थान, धातु, चर्या, आनापानसति, मन प्रवृतियां।

प्रस्तावना

पालि साहित्य में समाधि का अत्यधिक महत्त्व है। समाधि के विषय में अधिक जानकारी हेतु बुद्धघोषाचार्य द्वारा रचित विशुद्धि मार्ग नामक ग्रन्थ अत्यधिक उपयुक्त समझा जाता है। तथागत बुद्ध के जीवन के अंतिम महापरिनिर्वाण सूत्र [1] में शील, समाधि और प्रज्ञा इस प्रकार बार-बार समाधि के विषय में उल्लेख आया है। आर्य अष्टांगिक मार्ग के आठवें अंग के रूप में समाधि का उल्लेख है। आर्यअष्टांगिक मार्ग की सिद्धि अंतिम अंग समाधि से ही पूर्ण होती है। आर्यअष्टांगिक मार्ग का सर्वप्रथम उपदेश धम्मचक्रप्रवर्तन सूत्र [2] के अंतर्गत दिया गया है। दीघनिकाय के अंतर्गत महासतिपट्ठान सूत्र [3] में काया, वेदना, चित्त और धम्म की स्मृति-सम्प्रजन्य से युक्त होकर अनुपश्यना करने का उपदेश तथागत बुद्ध द्वारा दिया गया है जो समाधि का अभिन्न अंग है। सात बोध्यंग [4] (स्मृति, धर्म विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा) में समाधि को छठवे अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। मिलिंद प्रश्न में भी समाधि के गुणों का वर्णन प्राप्त होता है।

सभी धर्मों में चित्त (मन) ही प्रमुख है [5]। कायिक, वाचिक कर्म-संस्कार [6] भी मन से ही उत्पन्न कहे गए हैं। चित्त से ही जीव पुन: पुनः जन्म ग्रहण करने के लिए बाध्य होता है। चित्त को स्थिर, एकाग्र करके समाधि साधना के माध्यम से चित्त को कर्म संस्कारों से विहीन करना, विकारों से विहीन करना ही बौद्ध दर्शन का लक्ष्य है। इस उद्देश्य की

[1] सुत्तपीटक के अंतर्गत दिघनिकाय के महावग्ग में यह सूत्र हैं।

[2] विनयपीटक के अंतर्गत महावग्ग में धम्मचक्रप्रवर्तन सूत्र का उपदेश है।

[3] सुत्तपीटक के अंतर्गत दिघनिकाय के महावग्ग में यह सूत्र हैं।

[4] दिघनिकाय के महावग्ग में महासतिपट्ठान सूत्र के अंतर्गत सात बोध्यंगों को उपदेश है।

[5] मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया, देखे खुद्दकनिकाय के अंतर्गत धम्मपद की प्रथम गाथा (गाथा का भावार्थ-सभी धर्म अथवा चित्त अवस्थाओं का उद्गम पहले मन में होता है। मन ही श्रेष्ट है और सभी चैतसिक अवस्थाएं मन से उत्पन्न होने के कारण मनोमय हैं)

[6] संस्कार से आशय मनुष्य की प्रवृत्तियां है।

पूर्ति के लिए बौद्ध दर्शन में समाधि के महत्व को स्वीकार किया गया है।

चित्त की एकाग्रता को प्राप्त करना उस साधक के लिए कठिन है जिसका चित्त चपल और चंचल है। अथवा उस साधक के लिए भी उतना ही कठिन है जिसने कभी समाधि का अभ्यास नहीं किया है। बौद्ध दर्शन में मुक्ति अथवा निर्वाण प्राप्ति के लिए चित्त की एकाग्रता और वह भी कुशल एकाग्रता अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस कुशल एकाग्रता को केवल समाधि भावना के सम्यक अभ्यास द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। विशुद्धिमार्ग के अनुसार समाधि भावना के निरंतर अभ्यास से कुशल चित्त की एकाग्रता प्राप्त करके साधक स्थितप्रज्ञ बनकर निर्वाण का अनुभुव कर सकता है।

समाधि चित्त की परम अवस्था है जहाँ चित्त अपने लक्ष्य (मोक्ष-निर्वाण) की प्राप्ति के लिए एकाग्रचित्त हो जाता है। समाधि में साधक को अपने ध्येय के बिना कुछ और दिखाई नहीं देता। समाधि कुशल तभी हो सकती है जब चित्त भी कुशल होता है।

विशुद्ध समाधि की प्राप्ति के लिए साधक को पुरुषार्थ ही करना पड़ता है। समाधि अभ्यास के प्रारंभ से पहले और समाधि अभ्यास के साथ जबतक साधक तथागत बुद्ध द्वारा उपदेशित शील [7] पर स्वयं को भली प्रकार से आरूढ़ नहीं करता तबतक वह समाधि प्राप्ति से दूर ही रहता है। शील के साथ-साथ बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धांतों का समाधि की प्राप्ति में महत्वपूर्ण स्थान है। शील, समाधि और प्रज्ञा ये तीनों धर्म एक-दूसरे पर आश्रित कहे गए हैं।

समाधि की परिभाषा तथा प्रयोजन-

विशुद्धि मार्ग के अनुसार कुशल चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। भारतीय दर्शन में ज्ञान, मोक्ष, कैवल्य अथवा निर्वाण की प्राप्ति के लिए किसी न किसी साधन अथवा आलम्बन को आधार बनाया गया है। बौद्ध दर्शन में ज्ञान (निर्वाण) प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन अथवा आधार समाधि है। समाधि लाभ के लिए 40 कर्मस्थानों [8] का उपदेश तथागत बुद्ध द्वारा दिया गया है। इन चालीस कर्मस्थानों में किसी एक कर्मस्थान को अपनी समाधि का आधार बनाकर साधक जब चित्त की एकाग्रता के लिए प्रयास करता है तब समाधि चित्त तथा चैतसिक धर्मों को अविक्षिप्त बनाये रखने का कार्य करती है। समाधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि समाधि किसी एक ही आलम्बन में विक्षेप रहित रहती है। वह चित्त को चंचल, प्रकम्पित होने से दूर रखती है। समाधि प्राप्ति के लिए चित्त राग, द्वेष और मोह रहित होना अत्यावश्यक है।

समाधि की पहचान क्या है? राजा मिलिंद द्वारा पूछे गए इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भदंत नागसेन ने मिलिंद प्रश्न में कहा है कि "प्रमुख होना समाधि की पहचान है। जितने पुण्य-धर्म हैं, सभी समाधि के प्रमुख होने से होते हैं, इसी की ओर झुकते हैं, यहीं ले जाते हैं और इसी में आकर अवस्थित होते हैं।" [9] समाधि चित्त को अपने आलम्बन विषय के प्रति प्रमुख कर देती है। पुण्य धर्म करने की भावना भी साधक को समाधि से ही प्राप्त होती है। पुण्य धर्म अर्थात काया, वाचा तथा मन से किया जाने वाला सदाचरण। जब साधक की समाधि सभी प्रकार से प्रमुख हो जाती है तब वह पुण्य धर्मों का संचय करने लगता है। पुण्य धर्मों के संचयन और कुशल चित्त की एकाग्रता अर्थात समाधि ही साधक को निर्वाण की ओर ले जाती है जिसे तृष्णा का निरोध कहा गया है।

समाधि की प्राप्ति हेतु प्रमुख चालीस कर्मस्थान-

कर्मस्थान अथवा आलम्बन कुशल चित्त की एकाग्रता प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण आधार हैं। चालीस कर्मस्थानों में किसी एक कर्मस्थान को अपनी समाधि का आधार बनाकर साधक समाधि का लाभ कर सकता है। कर्मस्थान का चयन आचार्य के निर्देशानुसार तथा चर्या के अनुसार किया जाता है। चालीस कर्मस्थान हैं- दस कसिण, दस अशुभ, दस अनुस्मृतियाँ, चार ब्रह्मविहार, चार आरुप्य, एक संज्ञा और एक व्यवस्थान।

दस कसिण-

दस कसिण के अभ्यास के लिए साधक पृथ्वी, जल (आप), तेज, वायु, नील, पित, लोहित, अवदात, आलोक, परिच्छिन्नाकाश इनमें से किसी एक कर्मस्थान को समाधि लाभ के लिए आधार बनाता है। धारण किये गए कसिण का पुनः पुनः मनसिकार [10] करने से साधक को समाधि लाभ होता है।

दस अशुभ-

अशुभ [11] कर्मस्थान के लिए समाधि भावना के विषय के रूप में विभिन्न प्रकार के मानव शवों का आश्रय लिया जाता है। दस अशुभ इस प्रकार हैं- उर्ध्वमातक, विनीलक, विपुब्बक, विछिद्रक, विक्खायितक, विक्षिप्तक, हतविक्षिप्तक, लोहितक, पुलुवक और अस्थिक। मनुष्य को स्वयं के प्रति अत्यधिक ममत्व और आसक्ति का भाव होता है। उसे तोड़ने के लिए और अनित्य, अनात्म तथा दुःख की भावना करने के लिए इन दस अशुभ कर्मस्थानों का महत्व है। स्वयं के प्रति गहरी तृष्णा (आसक्ति) और उस तृष्णा के प्रति उपादान (आसक्ति के प्रति गहन चिपकाव) ही मनुष्य के दुःख का कारण है। इसी तृष्णा के निवारण के लिए अशुभ कर्मस्थानों की उपादेयता है। दस अशुभों पर ध्यान लगाने से शरीर की नश्वरता, जीवन के दुःख और अनित्यता का बोध होकर साधक कम समय में ही समाधि का लाभी बन सकता है।

दस अनुस्मृतियाँ-

दस अनुमृतियाँ हैं- बुद्धानुस्मृति, धम्मानुस्मृति, संघानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति, देवतानुस्मृति, मरणानुस्मृति, कायगतानुस्मृति, आनापानस्मृति और उपशमानुस्मृति। पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाली स्मृति ही अनुस्मृति कहलाती है। बुद्ध, धम्म, संघ, शील आदि के गुणों का बार-बार स्मरण करना ही अनुस्मृति है। इनमें से किसी एक अनुस्मृति को अपनी चर्या के अनुसार आधार बनाकर साधक समाधि का लाभ प्राप्त करता है। बुद्ध में जो गुण है, धम्म में जो गुण है, संघ में जो गुण है उन गुणों का पुनः पुनः स्मरण करने से साधक उन गुणों को धारण करने लगता है जिसका समाधि में लाभ होता है।

चार ब्रह्मविहार-

---

7 शील कई प्रकार के हैं जैसे उपासक और उपासिकाओं के लिए पञ्चशील, अष्टशील, भिक्षु भिक्षुणियों के शील अलग है जिनका उपदेश विनयपीटक में है।

8 विसुद्धिमग्ग,(पहला खंड), लेखक- आचार्य बुद्धघोष

9 मिलिंद प्रश्न, अनुवादक. भिक्षु जगदीश कश्यप, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2010, पृष्ट-55

10 बारबार मन में लाना, मनन करना

11 उर्ध्वमातक - फुला हुआ मृत शरीर, विनीलक - श्वेत और लाल रंग से निर्मित विनील रंग में पड़ा हुआ मृतदेह, विपुब्बक -पिब बहनेवाला मृतदेह, विछिद्रक - कटा हुआ अथवा छिद्र पड़ा हुआ मृतदेह, विक्खायितक -कुत्ते-सियार वा गीदड़ द्वारा इधर-उधर खाया हुआ मृत शरीर, विक्षिप्तक - शरीर के विविध अवयवों को खाकर कुत्तों-सियारों आदि द्वारा इधर-उधर फेंका हुआ मृत शरीर, हतविक्षिप्तक - हथियार से हत्या किया गया शरीर और इधर-उधर फेंका हुआ पुरे शरीर के अंग-प्रत्यंग पर कौवे के पैर के समान हथियार से मारकर हत्या किया गया शरीर ही हतविक्षिप्तक होता है, लोहितक - रक्त से भरे हुए शरीर के लिए लोहितक शब्द का प्रयोग किया गया है, पुलुवक - कीड़ों से भरा मृत शरीर, अस्थिक -मृत शरीर के हड्डियों का समूह (कंकाल)

चार ब्रह्मविहार [12] हैं- मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। चार ब्रह्मविहार एक प्रकार की भावना है जिसमें साधक का चित्त मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा से भावित हो जाता है। बार-बार भावना करने से चित्त इनके गुणों को धारण करता है जिससे चित्त की कुशल एकाग्रता में वृद्धि होती है जो समाधि में परम सहायक है।

चार आरुप्य (अरुपावचर ध्यान)-

चार आरुप्य ध्यान [13] समाधि की सूक्ष्मतम अवस्था है। रूपरहित होने के कारण इन्हें अरुपावचर ध्यान भी कहा जाता है। चार आरुप्य हैं- आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, अर्किंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन। आरुप्य की भावना करते समय साधक क्रमशः इनका अभ्यास करते हुए इन्हें समाधि का आलम्बन बनाता है और समाधि की सूक्ष्म से सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त करता है।

आहार में प्रतिकूल संज्ञा-

विशुद्धि मार्ग के अनुसार चार प्रकार का आहार कहा गया है- कबलीकार- आहार, स्पर्शाहार, मनोसंचेतना आहार और विज्ञानाहार [14]। कबलीकार आहार से ओजष्टमकरूप अर्थात चार महाभूत तथा गंध, वर्ण, रस, और ओज की प्राप्ति होती है। तीनो वेदनाओं की उत्पत्ति स्पर्शाहार से होती है। मनोसंचेतना आहार तीनों भवों में प्रतिसंधि (=मृत्यु और पुनर्जन्म के बिच का संधिकाल) का उत्पाद करता है और विज्ञान आहार का कार्य प्रतिसन्धि के समय नाम-रूप को उत्पन्न करना है। इस कर्मस्थान को कल्याणमित्र द्वारा भली-भांति सीखकर, सीखे हुए का पालन कर, एकांत स्थान को ग्रहण कर साधक जो भोजन ग्रहण करता है उस भोजन किये गए, पिए गए कबलीकार आहार को दस प्रकार से प्रतिकूल है इस प्रकार अवलोकन करता है। इसके बार-बार अभ्यास से निवरण दब जाते हैं और समाधि की प्राप्ति होती है। ऐसे साधक का चित्त रसास्वादन की इच्छा की ओर अभिमुख नहीं होता।

दस प्रकार का अवलोकन इस प्रकार है जैसे- गमन द्वारा, (प्रातः कालीन भिक्षु धर्म को करके भिक्षाटन हेतु प्रस्थान करते समय) पर्येषण (अन्वेषण) (भिक्षा ग्रहण करते समय उत्पन्न परिस्थितियों का पर्येषण) परिभोग द्वारा, आशय द्वारा, निधन द्वारा, अपरिपक्व द्वारा, परिपक्व द्वारा,फल द्वारा, निष्यंध (यहाँ वहां बहना) से और सम्मक्षण अर्थात लीपटने द्वारा। इस प्रकार आहार में प्रतिकूल संज्ञा कर्मस्थान का विधान है।

चतुर्धातु व्यवस्थान-

चतुर्धातु व्यवस्थान (पृथ्वी, आप, तेज, वायु) की भावना करनेवाला साधक भली प्रकार से इस शरीर की स्थिति और रचना के नुसार इसमें पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु तथा वायु-धातु को देखता है। जो भी शरीर में स्थूल, कड़ा अथवा कर्कश है वह सब पृथ्वी धातु की उपस्थिति है। जैसे केश, लोम, नख, दन्त, आदि जो भी स्थूल रूप में शरीर में विद्यमान है वह सब पृथ्वी धातु है। पित्त, कफ, पीब, लहू, पसीना आदि जो कुछ भी आप धातु के गुणधर्मों से युक्त है वह आप धातु है। जिससे शारीरिक स्तर पर गर्म की अनुभूति होती है, खाया-पिया जिससे पाचन होता है ऐसा शरीर में जो कुछ भी अग्नि स्वभाव का है वह अग्नि धातु के अंतर्गत आता है। आश्वास-प्रश्वास की वायु, पेट में स्थित वायु, अंग-प्रत्यंग में संचार करनेवाली वायु ये सब शरीर के अंतर्गत वायु धातु ही है। ये सभी धातु निर्जीव तथा सत्य-विहीन है ऐसी भावना साधक इनके विषय में करता है। जिससे इनके अनित्य स्वभाव का ज्ञान होता है। यह कर्मस्थान कायानुपश्यना का महत्त्वपूर्ण अंग है। विशुद्धि मार्ग के अनुसार इस प्रकार इन धातुओं का विपश्यना द्वारा शरीर में नित्य ध्यान करने से इन धातुओं में जो भेद है उनका ज्ञान होने पर समाधि की प्राप्ति होती है।

आनापान सति और समाधि-

कुशल चित्त की एकाग्रता को प्राप्त करने के लिए आनापान स्मृति एक बहुत ही अच्छा आलम्बन माना गया है। यह आलम्बन विशेष रूप से चंचल, चपल और वितर्क चरित के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। आनापानस्मृति में साधक आश्वास-प्रश्वास के प्रति अत्यंत ही सजग होकर उसपर अपना ध्यान एकाग्र करता है जिससे उसकी स्मृति स्थित होने लगती है। ऐसी स्थित स्मृति का उपयोग वह कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धम्मानुपश्यना के लिए कर सकता है जिसका उपदेश तथागत बुद्ध ने महासतिपट्ठान सूत्र में दिया है। काया, वेदना, चित्त और धम्म की अनुपश्यना करने से साधक को समाधि का लाभ होता है। इन चारों ही अनुपश्यनाओं का कुशलतापूर्वक अभ्यास से निर्वाणप्राप्ति निसंदेह संभव है ऐसा उपदेश तथागत बुद्ध द्वारा दिया गया है। आनापानसति समाधि की ओर ले जानेवाली पहली सीढ़ी है ऐसा कह सकते है।

शीलाचरण-

समाधि की प्राप्ति के लिए शीलाचरण की अत्यधिक प्रासंगिकता तथागत बुद्ध द्वारा बताई गयी है। शील को आधार बनाकर समाधि का नित्य अभ्यास करने से मनुष्य को अपने स्वरुप का वास्तविक दर्शन होना प्रारंभ हो जाता है। चित्त समाधि में अच्छी प्रकार तभी लगता है जब साधक परिशुद्ध शील का पालन करता है। परिशुद्ध शील पालन के साथ की गयी समाधि कुशल बन जाती है जो साधक को प्रज्ञा के क्षेत्र में ले जाती है जहाँ चित्त की अत्यधिक निर्मलता और संस्कारों (मानवीय प्रवृत्तियां) का निर्मूलन होना प्रारंभ हो जाता है। अकुशल मनो प्रवृत्तियों का पूर्ण रूप से निरोध और कुशल प्रवृत्तियों का चरम विकास करना ही समाधि का अभिदेय है।

निष्कर्ष –

सभी की चर्या अथवा स्वभाव एक समान नहीं होता। किसी में राग का अधिक प्राबल्य होता है, किसी में द्वेष का अधिक प्राबल्य तो किसी में मोह का अधिक प्राबल्य होता है। इस बात को ध्यान में रखकर विशुद्धि मार्ग में चर्या के अनुसार आलम्बन अर्थात कर्मस्थान को स्वीकार करने की बात कही गयी है।

बौद्ध दर्शन में 'ध्यान' तथा 'समाधि' दोनों ही शब्दों का प्रयोग मिलता है। समाधि कुशल धर्मों से सम्बंधित है। किन्तु ध्यान कुशल तथा अकुशल दोनों प्रकार के भावों को ग्रहण करता है। शील, समाधि और प्रज्ञा ही वह मार्ग है जिसके द्वारा साधक लोकोत्तर अवस्था (निर्वाण) की प्राप्ति कर विमुक्ति सुख की अनुभूति इसी जीवन में कर सकता है। आर्य अष्टांगिक मार्ग के अंतर्गत सम्यक समाधि का उपदेश दिया गया है जिसकी प्राप्ति प्रथम 7 अंगों के सम्यक अभ्यास से हो सकती है। समाधि आर्य अष्टांगिक मार्ग की सर्वोच्च शिखर है।

समाधि-साधना ही सर्व दुःखनाशक निर्वाण का सर्वोत्तम मार्ग है। विशुद्धि मार्ग के अनुसार सभी प्रकार के दुखों से मुक्ति के लिए मनुष्य के चित्त का कुशल होना अर्थात राग, द्वेष और मोह से रहित होना

---

12 अनंत मैत्री, अनंत करुणा, अनंत मुदिता और अनंत उपेक्षा में विहार करना ब्रह्मा का गुण है इसलिए इसे ब्रह्मविहार कहा गया है।

13 चार आरुप्य समाधि के अंग हैं। इनमें साधक आकाश, विज्ञान अर्थात चित्त, अर्किंचन अर्थात शुन्यता और संज्ञा (चित्त का वह हिस्सा जो किसी वस्तु को पहचानता है) अपने चित्त से साधक इन चारों ही कर्मस्थानों की अनंतता पर ध्यान करता है। पहले ध्यान में वह आकाश की अनंतता पर ध्यान करता है। दूसरे ध्यान में चित्त (विज्ञान) की अनंतता पर ध्यान करता है। तीसरे ध्यान में अर्किंचन अर्थात शुन्यता पर (कुछ भी नही है) ध्यान करता है। और चौथे ध्यान में साधक नैवसंज्ञानासंज्ञायतन पर ध्यान करता है इस ध्यान में चित्त इतना सूक्ष्म हो जाता है कि उसे यह अनुभूति होती है कि संज्ञा है भी या नहीं है। कभी लगता है कि संज्ञा नहीं है। इसलिए इसे नैवसंज्ञानासंज्ञा कहा गया है।

14 विसुद्धिमग्ग,(पहला खंड), लेखक- आचार्य बुद्धघोष

अत्यंत आवश्यक माना गया है। शील, समाधि और प्रज्ञा तीनों ही एक-दुसरे के पूरक धर्म है। शील आचरण के बिना समाधि की प्राप्ति नहीं हो सकती और समाधि के अभ्यास के बिना प्रज्ञा का उत्पाद असंभव है।

जब समाधि किसी साधक के लिए प्रमुख हो जाती है तब उसके सभी प्रकार के कुशल-धर्म समाधि साधना के प्रमुख होने से ही होते है अर्थात समाधि काया, वाचा और मन के कर्मों को सुधारने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। तथागत बुद्ध ने मध्यम-मार्ग का उपदेश दिया है जो आर्यअष्टांगिक मार्ग में समाहित है। आर्यअष्टांगिक मार्ग में समाधि एक महत्वपूर्ण अंग है।

जीवन में दुःख, असंतुष्टि और अशांति का सबसे बड़ा कारण मनुष्य के विकार और कर्म-संस्कार हैं उनके निर्मूलन के लिए और शांतिपद निर्वाण के लिए समाधि-साधना की अत्यंत उपयोगिता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तनाव, भय, क्रोध आदि विकारों से मुक्ति के लिए समाधि महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है, क्योंकि तथागत बुद्ध के अनुसार मनुष्य के अधिकतर दुःख शील-सदाचार का पालन न करने से उत्पन्न होते हैं। समाधि स्मृति हमेशा बनाये रखती है जिससे शील का पालन भली-भांति हो सकता है। विकारों से जितने प्रमाण में मुक्ति मिलती है उतने ही प्रमाण में जीवन में सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए विकारों से मुक्त करनेवाली इस समाधि साधना का विशुद्धि मार्ग के अनुसार मनुष्य जाति के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. विशुद्धिमार्ग: (भाग1) अनुवादक. त्रिपिटकाचार्य डॉ. धर्मरक्षित, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2008.
2. विशुद्धिमार्ग: (भाग 2) अनुवादक. त्रिपिटकाचार्य डॉ. धर्मरक्षित, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2008.
3. मिलिंद प्रश्नः, अनुवादक. भिक्षु जगदीश कश्यप, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2010.
4. भारतीय दर्शन में समाधि परंपरा (सन्दर्भ : बौद्ध और योग दर्शन), डॉ. वसिम खान, साहित्यागार, जयपुर, 2016.
5. बौद्ध धम्म में ध्यान साधना : निब्बानं मग्ग, डॉ. मनीष ताराचंद मेश्राम, गूंज प्रकाशन, दिल्ली, 2017.